

उत्पीड़न का विकल्प है जन प्रतिबद्ध सृजन

निरंजन सहाय

क्या ज्ञान कि कोई प्रक्रिया अराजनीतिक हो सकती है? बदलाव के आदर्श और व्यवहारवाद के नज़रिए में किस तरह का तनाव या द्वंद्व है? धर्म के रूपक कैसे पुरुष वर्चस्व और सत्ता की तरफदारी में अपनी सारी मेधा का उपयोग करते हैं? क्या समाज में कोई भी सक्रिय नज़रिया एक राजनीतिक दृष्टिकोण का प्रतिफल नहीं होता? वे समूह जिन्हें ज्ञान की दुनिया ने अपना न बनाया क्या व्यवस्था ने उनके लिए वही परिस्थितियां मुहैया करायी गईं, जिन्हें वर्चस्ववादी समूहों को दिया गया? नैतिक आदर्श की रूपक कथाएं या धार्मिक आदर्श की कथाएं कैसे वर्चस्ववादी समूह के हितों की रक्षा करती हैं? इतना ही नहीं क्या वे वंचित समूहों के दुर्दिन के लिए प्रारब्ध के ढोल पीटकर उनकी स्थिति को जायज ठहराने का प्रयास नहीं करतीं? ऐसे तमाम मुद्दों के आलोक में मशहूर शिक्षाशास्त्री पाओलो फ़ेरे की पुस्तक 'उम्मीदों का शिक्षाशास्त्र' पढ़ना एक विचारोत्तेजक और स्फूर्तिदायक अनुभव है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि फ़ेरे की यह किताब लगातार मूल्यांकन और सार्थक रणनीतिक बदलाव का एक ऐसा दृष्टिकोण देती है, जिनके बल पर बेहतर समाज का सपना संभव होता है। वे अपने नज़रिए के सिलसिले में न केवल खासे चौकन्ने हैं, बल्कि वे यह कहने में गुरेज नहीं करते कि उनके वे प्रतिपक्षी जो उनकी पक्षधरता को राजनीतिक रणनीति का हिस्सा घोषित कर उन्हें शिक्षाशास्त्री मानने के लिए ही तैयार नहीं, वे भी एक विशेष तरह की राजनीति की ही वकालत कर रहे हैं। बकौल फ़ेरे, "वे यह भूल गए कि 'अति-राजनीतिक' बताकर मुझे शिक्षाविद् की बिरादरी से बाहर करने के प्रयास में वे उतने ही राजनीतिक हो रहे थे जितना कि मैं। अलबत्ते हम विरोधी खेमों में ज़रूर थे। 'निष्पक्ष' वे नहीं थे और न कभी हो सकते थे।" कहना न होगा जिनके लिए शिक्षा का मतलब अक्षरों का निष्प्राण साक्षात्कार भर नहीं है, बल्कि सभ्यता-संस्कृति की समीक्षा है, उनके लिए फ़ेरे के शिक्षायी चिंतन का विशेष महत्त्व है।

फ़ेरे भूमिका में बताते हैं कि उन्होंने इस किताब में अपनी पूर्वरचना 'उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र' का अवलोकन किया है। पर सवाल यह है कि उक्त रचना का पुनरावलोकन क्यों? दरअसल फ़ेरे उन बेहद दुर्लभ शिक्षाशास्त्रियों में शामिल किए जा सकते हैं, जिन्होंने

अपनी हर विचार यात्रा का गंभीर पुनरावलोकन किया और फिर उनके आलोक में अपनी समझ को पुनर्नवता के वैभव से समृद्ध किया। इस लिहाज से उनकी पुस्तक 'उम्मीदों का शिक्षाशास्त्र' वह नायाब रचना है, जिसके माध्यम से हम एक मुकम्मल बुद्धिजीवी के रूप में उनके रूपांतरण की प्रक्रिया को बखूबी समझ सकते हैं। बकौल फ़ेरे, "अब मैं इस किताब के बारे बताऊंगा कि इसे लिखते-लिखते कैसे मैं सीखता रहा और कि मैं सचमुच, इस शिक्षाशास्त्र की चर्चा शुरू करते हुए इस किताब को लिखना सीख रहा था।" इस किताब के अध्यायों के बारे में बात करने के पहले दो पदों की चर्चा करना जरूरी है- 'व्यवहारवादी विमर्श' और 'आशा'। दरअसल फ़ेरे के चिंतन के केन्द्र में इन दोनों पदों की मौजूदगी है। दोनों पद दो विपरीत ध्रुवांतों पर मौजूद हैं। प्राक्कथन की शुरुआत में ही फ़ेरे की दिलचस्प घोषणा है, "चारों तरफ से हमें एक व्यवहारवादी विमर्श ने घेर रखा है, वास्तविकता को बदलना नहीं उसके अनुरूप ढलना ही जिसका मूलमंत्र है। सपने और यूटोपिया यहां के लिए न सिर्फ बेकार बल्कि राह का रोड़ा माने जाते हैं।" जाहिर है फ़ेरे ऐसे व्यवहारवाद के प्रति खासे चौकन्ने हैं। इसी सिलसिले में वे 'आशा' का जिक्र करते हैं, अनुवादक ने इसके लिए 'उम्मीद' शब्द का प्रयोग किया है। फ़ेरे उम्मीद या आशा को एक अस्तित्वमूलक आवश्यकता घोषित करते हुए हमें आगाह करते हैं, "आशाविहीनता अगर कार्यक्रम ही बन जाए तो वह हमें लकवा मार देती है, हमारी गतिशीलता को खा जाती है। हम नियतिवाद का शिकार हो जाते हैं और अपने भीतर से वह ताकत जुटाना हमारे लिए असंभव हो जाता है जिसके बिना दुनिया की पुनर्रचना की भीषण लड़ाई छेड़ना नामुमकिन है।" जाहिर है इन दोनों पदों के इर्द-गिर्द किताब की विचारयात्रा परवान चढ़ती है।

जब आदमी अपने अस्तित्व को स्वीकारता है तभी आशा का जन्म होता है। इसे और गहराई से समझें। जैसे, यदि उत्पीड़ित अपने अस्तित्व को स्वीकार करता है, तभी उसमें आशा की परिकल्पना पनपती है और वह अपने इर्द-गिर्द की हकीकतों से रू-ब-रू होता है। फिर उसमें बदलाव की आशा का जन्म होता है। दूसरी तरफ व्यवहारवादी समझ इंसान को एक मशीन के रूप में देखती है। एक ऐसी मशीन जो न तो निर्णय ले सकती है और न ही जिसमें संवेदना होती है। कहना न होगा फ़ेरे इसे सपने और यूटोपिया के लिए सबसे बड़े बाधक के रूप में देखते हैं। ज्ञानमीमांसीय व्याख्या यानी 'यही क्यों', 'ऐसा ही क्यों' को व्यवहारवाद हतोत्साहित करता है। फ़ेरे शिक्षक और शिक्षा की दुनिया से ताल्लुक रखने वाले लोगों से इसके लिए आह्वान करते हैं कि वे किसी विचार के नेपथ्य और उपयोगितावादी नज़रिए को बेनकाब करें। इसके बिना शिक्षा की बात अधूरी है। 'आशावान' होना फ़ेरे के दर्शन की आत्मा है। फ़ेरे यह बखूबी बताते हैं कि कैसे धर्म की परिकल्पना जो व्यवहारवादी दर्शन का एक मजबूत उदाहरण है आदमी को नियतिवादी बनाती है। जबकि आशा अस्तित्व की लड़ाई में बुनियादी भूमिका निभाती है।

नियतिवाद का कमाल यह है कि उत्पीड़ित अपने भीतर ही उत्पीड़क को देखने लगता है। फ़ेरे किसान समूह, विशेष रूप से ब्राजील के किसान समूहों से हुए विभिन्न संवादों का जिक्र करते हैं। वे पाते हैं कि किसानों का जीवन से जुड़ी बहुत-सी बातें वे नहीं जानते हैं, तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि फ़ेरे के ज्ञान संसार से किसान भी परिचित नहीं। वे महसूस करते हैं कि वे जानते हैं इसलिए कि उन्हें ज्ञानार्जन के अवसर मिले, किसान नहीं जानते इसलिए कि उन्हें ज्ञानार्जन अवसर नहीं मिले। इस संदर्भ की व्याख्या के बाद वे यह समझ-समझा पाने में समर्थ होते हैं कि 'ईश्वर इन सब बातों का कारण नहीं है।' फ़ेरे की स्वीकारोक्ति देखिए, "नहीं ईश्वर इन सब बातों का कारण नहीं। वह मालिक का काम है। जीवन में शायद पहली बार ये किसान जुड़ाव के उस बंधन से बाहर आने की कोशिश कर रहे थे जिसे मैंने 'उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र' में उत्पीड़ित का उत्पीड़क के साथ 'जुड़ाव का बंधन' कहा है। आज वे उत्पीड़क के साथ अपने उस रिश्ते से पीछे हटने की कोशिश कर रहे थे और जैसा कहना फ़ैनन पसंद करते वे उत्पीड़क को अपने से 'बाहर' चिह्नित कर रहे थे।" कहना ना होगा फ़ेरे ज्ञान को समाज व्यवस्था से नाभिनालबद्ध मानते हैं। दूसरे अध्याय में 'उत्पीड़ितों का

लेखक

निरंजन सहाय

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी में हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। समाज, संस्कृति और शिक्षा के अन्तर्संबंधों पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लिखते रहते हैं।

शिक्षा विमर्श

जुलाई-अगस्त, 2013

39

शिक्षाशास्त्र' का पुनरावलोकन है। जिसमें उस पर प्रतिबंध, राजतंत्र के भय, छपने के बाद पढ़ने की क्रिया और पठन के आलोक में उभरे लैंगिकता के सवाल और इन मुद्दों पर फ्रेरे के बदलने की प्रक्रिया की ईमानदार छानबीन है। भाषायी विन्यास बरतने के दौरान लैंगिक आग्रहों पर उनकी टिप्पणी गौरतलब है, “किसी भी अधिनायकवादी विमर्श की पराजय की तरह लैंगिक विमर्श की पराजय भी हमसे यह मांग करती है, बल्कि यह अनिवार्यता हम पर थोपती है कि नए, जनवादी और भेदभाव विरोधी विमर्श को चलाने के साथ-साथ हम अपने-आपको जनवादी आचरण में भी उतारें।” फ्रेरे इस अर्थ में अन्य शिक्षाशास्त्रियों से अलग हैं कि उन्होंने अपने अध्ययन-लेखन को उत्पीड़ितों (जिनमें स्त्रियां भी शामिल हैं) से साझा किया और उनके आलोक में खुद को बदला। कहना न होगा पाठ यह संदेश देता है, संभव है कि आप किसी एक पक्ष पर बेहद प्रगतिशील हों, आलोचनात्मक हों, लेकिन दूसरे पक्ष पर संकीर्णता, रूढ़िवादी हो सकते हैं। लिहाजा मनुष्य को खुद की छानबीन बार-बार करनी चाहिए।

शिक्षा का चरित्र कैसा हो? उसका कार्य-व्यापार चाहे कितना ही तटस्थ क्यों न लगे दरअसल वह एक राजनैतिक कार्यवाही है। वे ज्ञान के सृजन और उसके अधिकार के मुद्दे पर बेहद गंभीर और संवेदनशील नज़रिए से बात करते हैं। ज्ञान का सृजन उनके लिए कोई अमूर्त आध्यात्मिक अवधारणा नहीं है। वह ठोस वास्तविकताओं से लबरेज है जो जीवन की ज़रूरतों, संघर्षों और वर्गवादी समाज में अपने नज़रिए के स्टैण्ड लेने की वकालत करता है। फ्रेरे शिक्षकों और विद्यार्थियों में इस समझ को विकसित करने की वकालत करते हैं, जिसकी बुनियादी चिंता यह हो कि वे समझ पाएं कि ज्ञान कैसे काम करता है, किन लोगों के लिए सक्रिय होता है और कहां उस प्रक्रिया में आलोचनात्मक हस्तक्षेप कर उसे रूपांतरित करने की ज़रूरत है। इसी मुद्दे का विस्तार वे पाठ्यचर्या जैसे संवेदनशील मसले तक करते हैं और कहते हैं, “हम एक बार फिर यही दोहराना चाहते हैं कि पाठ्यवस्तु के बगैर कोई शैक्षिक व्यवहार इतिहास में कभी नहीं देखा गया। यह सवाल विचारधाराओं का रंग लिए एक राजनीतिक सवाल है। बुनियादी सवाल यह है कि पाठ्यवस्तु को कौन चुनता है और किन लोगों और चीजों की तरफ से

चुनावकर्ता को शिक्षित किया जाता है?” वे अध्ययन में यह मुद्दा भी शामिल करते हैं कि सवाल यह भी है कि कक्षा में पाठ के साथ शिक्षक का बर्ताव क्या है। पाठ निर्माण और उद्देश्य के विश्लेषण की समग्र प्रक्रिया को नज़रअंदाज़ कर शिक्षक द्वारा पाठ की सही यात्रा संभव नहीं। इस मुद्दे पर वामपंथ और दक्षिणपंथ दोनों सरलीकृत निष्कर्ष से संचालित होकर अधिनायकवादी रवैया अख्तियार करते हैं। ‘उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र’ की रचना के दौरान उन्हें अनेक अनुभव ऐसे हुए जिनके बल पर वे कथा रूपक या मिथकों का जनवादी विश्लेषण कर सकने में सफल हुए। असल में व्यवहारवाद हमेशा उन नए विमर्शों को खारिज करता है जिससे स्थापित व्यवस्था डगमगाती है। इस सिलसिले में स्विस स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली कथाओं का उन्होंने भाष्य किया और उनमें छुपे अन्तर्निहित संदेशों का औचित्य निरूपण किया। मजदूरों द्वारा सुनाई गई एक ऐसी कहानी, जिसमें चरित्र के रूप में पापा, मम्मी और सुअर के साथ तीन नन्हे बच्चे शामिल थे। उनमें सबसे छोटा बच्चा हमेशा जिज्ञासाओं के अनुरूप सक्रिय रहता और हमेशा नई चीज को आजमाने की फिराक में रहता था। अपनी इन आदतों के चलते वह एक दिन भारी मुसीबतों में पड़ गया। वह बुरी हालत में घायल होकर घर पहुंचा। पिता जैसे इस पल का इंतजार कर ही रहे थे। उन्होंने व्यवहारकुशलता का परिचय देते हुए कहा, “अगर हम बदलने के फेर में पड़ेंगे तो बुरी तरह



उम्मीदों का शिक्षाशास्त्र

लेखक : पाओलो फ्रेरे

प्रकाशक : ग्रंथ शिल्पी (इण्डिया) प्रा. लि.

बी-7, सरस्वती कॉम्प्लेक्स, सुभाष चौक,

लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092

मूल्य : 525

चोटिल होने का खतरा झेलेंगे।” फ्रेरे की टिप्पणी मूल्यवान है, “ऐसे ही पंगु बनाने वाले सुझावों, पालतू बनाने वाले कार्यक्रमों के खिलाफ स्पेन के मजदूरों का चुनौती और सवाल करने वाला स्कूल खड़ा किया जा रहा था।” उन्होंने पीड़ितों को वैचारिक विरादरी का हिस्सा बनाया। पाठ की पुनर्रचना और शिक्षा की बदली अवधारणा के बल पर फ्रेरे ने वह कर दिखाया जिसे उस दौर में लोग व्यवहारवाद के उलट और कोरा आदर्शवाद कहकर खारिज कर रहे थे।

उन्होंने विभिन्न यूरोपीय देशों और लातिन अमरीकी देशों की यात्राओं के दौरान अनेक समूहों से न सिर्फ अपने अनुभव साझा किए, बल्कि अनेक बार उनके आलोक में खुद को जांचा-परखा भी। इस सिलसिले में उन्हें राजनैतिक सत्ता, व्यवस्था की संरचनागत विशेषता, बदलाव के लिए सक्रिय समूह आदि से जुड़े अनेक जमीनी हकीकत के अनुभव हासिल हुए। फ्रेरे ने उन्हें बेहद प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है, जिनमें कुछ का उल्लेख मौजूं होगा:

- भेदभाव चाहे वह प्रत्यक्ष और जाहिरा तौर पर खटकने वाला हो या फिर अप्रत्यक्ष या पाखंड की परतों में छुपा हो, वह उतना ही आहत करता है और अनैतिक होता है। और उसके खिलाफ विद्रोह करना मेरी आदतों में बचपन से ही शामिल रहा है। अतीत में मेरी नजर जितनी दूर जा सकती है मैंने लगभग स्वभाववश अपने को नस्लीय भेदभाव के हर अक्षर, कारनामे, प्रतीक और गरीबों के खिलाफ प्रतिक्रिया करते पाया है, गरीबों के प्रति किए गये भेदभाव के खिलाफ पाया है जिन्हें फिर बाद में मैंने वर्गीय भेदभाव के रूप में परिभाषित किया है। जेनेवा या युनाइटेड स्टेट्स में प्रवास के दौरान दक्षिण अफ्रीकी, काले या गोरे लोगों से मैंने नस्लभेद के जिन कृत्यों की प्रामाणिक कथा सुनी उनसे हमेशा सदमा लगा है। इस वक्त उन्हें याद करते हुए भी मैं उसी सदमे का अनुभव कर रहा हूं। नस्लवाद की हकीकत इतनी बर्बर है कि भावना का जरा-सा भी जज्बा जिस आवाज में होगा वह कांपते हुए यह चीज उठेगी : भयावह।
- दरअसल, उपनिवेशीकृत लोग और उपनिवेशीकृत देश तब तक अपनी मुक्ति को पक्का नहीं बना सकते, तब तक अपनी सांस्कृतिक पहचान को हासिल करने या फिर से हासिल करने में कामयाब नहीं हो सकते, जब तक कि वे अपनी भाषा और विमर्श का उत्तरदायित्व खुद अपने हाथ में न कर लें और बदले में वह भी उन्हें न अपना लें।
- कोई सांस्कृतिक बहुलता स्वतःस्फूर्तता में जन्म नहीं लेती। हरेक सांस्कृतिक बहुलता को जरूरी तौर पर रचना पड़ता है। राजनीतिक तौर पर उत्पादित करना पड़ता है। ठोस इतिहास में, अपने भाग्य पर पसीना बहाते हुए, आगे बढ़ाने के लिए उस पर मशक्कत करनी पड़ती है।
- यह जरूरी है कि हम उन समाजों की दहलीज लांघकर आगे बढ़ें जिनके ढांचे ऐसी विचारधारा पैदा करते हैं जो खुद उन्हीं ढांचों द्वारा पैदा किए गए संकटों और असफलताओं का ठीकरा समाज के असफल लोगों के माथे पर फोड़ती है।
- सबसे बदतर प्रतिक्रिया तो वह सदाचार वाली खामोशी होती है जो मतभेदों को छिपाती है। अच्छा तो यह हुआ कि विभिन्न समूहों ने, बल्कि ज्यादातर ने, अपनी प्रतिक्रिया सामने रखी, भले ही वे तथ्यों और समस्याओं पर मेरे नजरिए के खिलाफ खड़ी होने वाली थी।
- अपने होने पर, अपने लिखने पर प्रतिबंध झेलने वाले हैती के जनवर्गों ने मानो अपने प्रतिवाद, अपनी आलोचना और अपनी घोषणा के विमर्श को कला के जरिए अभिव्यक्त कर दिया हो, जो विमर्श का एकमात्र ऐसा तरीका था जिसकी वहां उन्हें अनुमति हासिल थी।

- इतिहास किसी दुःसाहसी की उदात्त इच्छा के आगे न तो समर्पित होता है और न ही उसके सामने एक पालतू की तरह दुम हिलाता है।

शिक्षक, विद्यार्थी, सेना के जनरल, विरोधी राय प्रकट करने वाली संस्कृतियां (मसलन ब्राजील और पुर्तगाल की पारंपरिक शिक्षा संस्कृतियां) आदि समूहों से फ्रेरे ने अपनी मशहूर किताब 'उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र' के सिलसिले में बात की और एक ऐसे बेहतरीन शिक्षाशास्त्री के रूप में वे हमारे सामने आए, जो परिस्थितियों की जटिलता को न सिर्फ बेहतरीन ढंग से समझता है, बल्कि उनके आलोक में खुद की स्थापनाओं का सम्यक मूल्यांकन भी करता है। किताब के अंतिम चरण में पाओलो फ्रेरे ने बदलाव के स्वप्न के साकार होने की स्थिति, प्रक्रिया और भविष्य की रणनीतियों पर विचार किया है, वे यहां तक पहुंचकर रुक नहीं जाते, बल्कि शिक्षाकर्मियों को आगाह भी करते हैं कि लक्ष्य पा लेना अंत नहीं है, बल्कि उस प्रक्रिया को जारी रखना अस्तित्वगत जरूरत है। मौजूं होगा उनके कथन के रास्ते इस पूरे मसले को समझें, "लड़ाई जीतना एक प्रक्रिया है और उसके बारे में यह कभी नहीं कहा जा सकता, हम जीत गए, अध्याय खत्म। जिस वक्त यह क्षण कालातीत बना दिया जाता है, क्रांति को लकवा मार जाता है।" कहना न होगा फ्रेरे मनुष्यता के पक्ष में शिक्षा की अंतहीन लड़ाई के प्रतिबद्ध योद्धा के रूप में अपनी मौजूदगी बखूबी पहचानते हैं।

सैनिक तानाशाही के दौर में फ्रेरे पंद्रह वर्ष तक ब्राजील से निर्वासन का दारुण दुःख झेलने के लिए विवश हुए। इस दरमियान उन्होंने उत्पीड़ितों के हक में एक स्फूर्तिदायक शैक्षिक दर्शन को सिरजा। उनकी सहयोगी एना मारिया एराउजो फ्रेरे अपने विचार को उनके पाठ से इस रूप में बावस्ता पाती हैं, जिसकी दिशा यह त्रिभुज व्यक्त करता है- प्रतिबंध, मुक्ति और आशा। बकौल एना मारिया एराउजो फ्रेरे, 'पाओलो फ्रेरे की देह पर प्रतिबंध (उनके विचारों के साथ-साथ) ब्राजील में जिस पर पंद्रह बरस की लंबी अवधि तक प्रतिबंध लगा रहा। उन पर और अनेक दूसरे ब्राजीलियों पर लादे गए प्रतिबंध और पाबंदियां - एक विरोधाभासी प्रतिक्रिया के बतौर जो उन्हें उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र लिखने की ओर ले गई। उस किताब के जन्म की तरफ जो ब्राजील में सदियों से पुनरुत्पादित होते रहने वाले प्रतिबंध के रूपों को खारिज करती है और व्यक्तियों की मुक्ति की संभावना को खारिज करती है।' कहना न होगा फ्रेरे की किताब 'उम्मीदों का शिक्षाशास्त्र' इसी त्रिभुज के व्यवहारिक सच को दुर्दम्य जिजीविषा के साथ बयान करती है। ◆